ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 315-317
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

साम्प्रदायिकता : एक समाजशास्त्रीय विवेचन

अवनीश कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर – समाजशास्त्र विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुदिष्टपुरी – रानीगंज, बलिया (उ0प्र0) भारत

Received-15.09.2022, Revised-20.09.2022, Accepted-26.09.2022 E-mail: avanish.s.nath@gmail.com

सारांशः – "साम्प्रदायिकता एक ऐसा पागलपन है जो लोगों को मानसिक और आध्यात्मिक रूप से इतना अंधकार बना देती है, जिससे मानव–मानव के बीच अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। साथ ही समाज में राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाती है और देश का वातावरण विषाक्त हो जाता है। प्रस्तुत आलेख भारतीय समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता के कारणों एवं उसके स्वरूपों तथा उसके समाधान का एक प्रयास है।"

कुंजीभूत शब्द– साम्प्रदायिकता, मानसिक, आध्यात्मिक, अंधकार, अलगाव, राष्ट्रीय, एकता, अखण्डता।

साम्प्रदायिकता एक चुनौती भरी समस्या के रूप में केवल समाज और राजनीतिज्ञों के सामने ही नहीं आयी वरन् समाजशास्त्रियों के लिए भी उसने एक अभूतपूर्व चुनौती दी है। शायद यह पहला ही मौका है जब सिद्धान्त और पद्धति के दृष्टिकोण से स्पेंगलर के शब्दों में "अप टू डेट" (UP to Date) कहा जाने वाला विज्ञान समाजशास्त्र, साम्प्रदायिकता का न कोई सही विश्लेषण कर पा रहा है, न इसके संबंध में कोई सिद्धान्त प्रस्तुत कर पा रहा है। और तो और हम निश्चित रूप से यह भी नहीं कह पा रहे है कि इसके लिए क्या अध्ययन पद्धति अपनाई जाये। अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान के दृष्टिकोण से साम्प्रदायिकता का विषय अनेक समस्याओं से उलझा हुआ है। प्रथम तो यह है कि विस्तार के साथ इस समस्या का एक पूर्ण अध्ययन के रूप में कोई ग्रन्थ या अनुसंधान उपलब्ध नहीं है। इतिहास, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में इस समस्या पर कुछ सामग्री उपलब्ध है पर वह केवल कुछ पृष्ठों तक या संदर्भो तक ही सीमित है कोई पूर्ण और व्यवस्थित, अध्ययन इस समस्या के संबंध में उपलब्ध नहीं है। पत्रकारिता का क्षेत्र जरूर साम्प्रदायिकता से पूर्ण लेखों से भरा रहता है परन्तु उनसे ऐसे लगता है कि इस प्रकृति के ये लेख साम्प्रदायिकता के ही अंश है न कि उनका कोई व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन एवं निराकरण। शुद्ध हिन्दु और मुस्लिम मनोवृत्ति के अखबार एक दूसरे की साम्प्रदायिकता मनोवृत्तियों कार्यो इत्यादि को खूब छापते रहते है। कुछ लेखक आवश्य ऐसे है जो सही संदर्भों में साम्प्रदायिकता के विश्लेषण एवं व्याख्या पर वैज्ञानिक स्तर के लेख लिखते हैं। लेखक कितने ही तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण क्यों न किया हो, कहा जाता है कि उस लेखन से उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची है। ऐसी स्थिति में सही तथ्यों का न उल्लेख किया जा सकता है, न उनकी मीमांसा की जा सकती है और न उस कार्य व्यवहार पर कोई टिप्पणी की जा सकती है। एक सीधे उदाहण के रूप में उसे उद्धत भी नहीं किया जा सकता है। और तो और अध्यापन में भी उसे विद्यार्थियों को नही बताया जा सकता है क्योंकि यह अतिसंवेदनशील विषय बन जाता है। यदि उस सत्य को नहीं बताते या सिखते है तो इतिहास सत्य से परे हो जाता है और यदि उस सत्य को बताते या लिखते है तो साम्प्रदायिकता का जन्म हो जाता है अब ऐसी स्थिति में क्या किया जाए ? नजीता यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने तरीके से ही इसे समझता है और लेखक या संपादक अपने बलबूते पर ही ऐसे लेखों या पुस्तकों को छापते है।

साम्प्रदायिकता के पीछे आर्थिक हित, असमान विकास, मुसलमानों का ज्यादा गरीब होना, या आर्थिक समस्यायें हल हो जाने से साम्प्रदायिकता कम हो जाना जैसे विचारों एवं धारणाओं से साम्यवादी विचाराधारा के लेखकों ने विकृत एवं भ्रमित रूप में प्रयोग किया है जो आधुनिक इतिहास लेखन की कला या विज्ञान के नाम से स्वयं को ज्यादा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते है। इनके लिए साम्प्रदायिकता के सांस्कृतिक और धार्मिक कारक समझ से बाहर है और इन्हें सामाजिक अन्तःक्रिया का न्यूनतम ज्ञान होता है। धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वास तथा मनोवृत्तियाँ साम्प्रदायिकता के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक है जिन्हें आधुनिक इतिहास लेखनवादी या इतिहास के आर्थिक विवेचनाकार अध्ययन का आधार बनाना नही चाहते, शायद इसीलिए कि यह नग्न सत्य उनके प्रेरणा स्त्रोत मार्क्स के सिद्धान्तों को खण्ड–खण्ड में विभाजित कर देता है। दूमाँ1 ने अपने एक लम्बे लेख "राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता" में इस तथ्य को प्रकट किया है। कि आर्थिक कारकों को हर स्थिति में सर्वोपरि महत्व देना साम्प्रदायिकता को सही रूप में समझने और अध्ययन करने में सबसे बड़ी बाधा है। इससे पद्धतिशास्त्र उस सूक्ष्म, गहन, पैनी एवं काल भेदक दृष्टि से वंचित हो जाता है जो उस समस्या को गहराई में झांक सकती है, सत्य को पकड़ सकती है और भ्रम का निवारण कर सकती है।"

अतः समाजशास्त्री की हिम्मत को भी पद्धति का अंग बनाना होगा और स्पष्टरूप से कहना होगा कि धार्मिक विश्वास, मान्यतायें और मनोवृत्तियाँ ही साम्प्रदायिकता को जन्म दे रही है। इन्हें मुख्य और आधारभूत रूप से अध्ययन का केन्द्र बनाना

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

चाहिए और ऐसा करना ही यदि साम्प्रदायिकता मान लिया जाता है तो फिर यह समस्या सिर्फ पद्धतिशास्त्र की समस्या है और इसे इसी रूप में हल किया जा सकता है।

उपरोक्त प्रस्तुतीकरण से मेरा तात्पर्य यह है कि आर्थिक विवेचना का आधार कमजोरियों से भरा पड़ा है और इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि अन्य सभी कारणों को नकारनें पर बल देता है। साम्प्रयादिता एक धार्मिक–सांस्कृतिक मनोवृत्ति और दृष्टिकोण की उपज है। इससे पूर्व इसका उल्लेख किया जा चुका है कि किस तरह आर्थिक कारकों के आधार पर निकाले गए भ्रमित निष्कर्षों ने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। इस तत्कालीन संदर्भ में कि किस तरह साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित लेखनों ने पद्धति का प्रयोग किया है। प्रो0 विपिन चन्द्र के ग्रन्थ "आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता" को देखना आवश्यक है। यह पुस्तक अपने आप में एक उदाहरण ही है कि किस तरह 'पूर्व–आग्रहो' या पूर्व निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए पद्धति को तोड़ा–मड़ोड़ा गया है प्रो0 विपिन चन्द्र ने प्रारम्भ में ही पद्धति संबंधित जिस 'मूल दृष्टिकोण' को अपनाया है। साम्प्रदायिकता एक आधुनिक वैचारिकी है जिसने भूत काल की वैचारिकी के कुछ तत्व, संस्थाये और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी अपने में समाहित की हुई है। साम्प्रदायिकता भूतकाल की देन नहीं है, साप्रदायिकता किसी परम्परागत पूरानी वैचारिकी का भी पूर्व आगमन नही है, यह ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन है।

यशस्वी इतिहासकार प्रो0 इरफान हबीब ने कहा है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद की श्रृंखलाओं को तोड़ने के संघर्ष में भारतवाशियों की एकता ने साम्प्रदायिकता को नकार दिया था और राष्ट्रीय आन्दोलन की सबसे बड़ी विरासत हिन्दु, मुस्लिम एकता का ऐतिहासिक सत्य है स्वतंत्रता सेनानियों को देश विभाजन के लिए कलंकित नहीं किया जाना चाहिए। बटवारा आजादी की लड़ाई का परिणाम नहीं बल्कि उसको लगा आघात है। हिन्दु मुसलमानों को संग्राम की मुख्यधारा में एक करने की गलती कहना अनैतिहासिक है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा 1931 में करांची प्रस्ताव के दिन से ही यह क्रान्ति की उपलब्धि रही है कि यह विभिन्न धर्मावलंबियों का एकता में सूत्रबद्ध करने में सक्षम हो सकी। 1916 में कांग्रेस मुस्लिमलींग ऐक्ट को न्यायोचित कहा जायेगा। यह आवश्यक है कि हम अतीत से शिक्षा लें और वर्तमान समस्याओं के उत्तर मैं वैज्ञानिक धर्मनिरपेक्षता का सहारा लें।

गम्भीर इतिहासकार प्रो0 नूरूल हसन ने "दी बीजन ऑफ जवाहर लाल" पर बोलते हुए कहा कि जवाहर लाल साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे और आजीवन भारत को इस व्याधि से मुक्त करने हेतु संघर्षरत रहे, उन्होंने कहा था कि साम्प्रदायिकता से भारत में फासिज्म का राक्षस जन्म ले सकता है, नेहरू ने भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता से युद्ध किया उनमें प्रत्येक धर्म के प्रति सम्मान था और उन्होंने धर्म से राजनीति के पृथक्करण की वैज्ञानिक दृष्टि अपनाई उनकी इतिहास दृष्टि भी साम्प्रदायिकता के विरूद्ध थी।5

स्वतंत्र भारत की राजनीति में साम्प्रदायिकता की समस्या पर विचार करने पर एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि स्वंतत्रता प्राप्ति से पूर्व साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति में एक विशिष्ट ऐतिहासिक विकास हुआ तथा स्वतंत्रता के बाद यह एक विचारधारा बन गई क्योंकि साम्प्रदायिक हिंसा बिना साम्प्रदायिक विचारधारा के संभव नहीं है। या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक विचारधारा की परिणिति साम्प्रदायिक हिंसा में होती है। इन दंगो में जन–धन की व्यापक क्षति होती है। लेकिन कहीं इसका दीर्घकालीन दुष्टपरिणाम होता है। इन दंगों के कारण साम्प्रदायिक विचारधारा का तेजी से प्रसार होता है। इसके अतिरिक्त ऐसे अवसरों पर धर्मनिरपेक्ष जनों की भी अपने–अपने प्राण और सम्पत्तियों की रक्षा हेतु साम्प्रदायिक तत्वों के साथ गठजोड़ करना पड़ता है। हाल के वर्षों में भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता की भूमिका के सम्बन्ध में कई अन्य तथ्यों को देखा जा सकता है। पहला यह है कि अब साम्प्रदायिकता की भावना केवल शहरों तक ही सीमित नहीं रह गयी है अपितु सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में भी तेजी से प्रसारित हुई है। दूसरा यह कि अब साम्प्रदायिकता क्रमशः जन आन्दोलन का रूप लेती जा रही है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि ब्रिटिश भारत में एक धर्म राज्य तो मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने बनवा दिया लेकिन आजादी के 73 वर्ष बाद भी भारतीय धर्मनिरपेक्षता से पाकिस्तान का झगड़ा समाप्त नहीं हुआ। पंजाब में वह एक सिक्ख धर्म राज्य को सहायता देने पर आमादा है और काश्मीर में उसके पास दो विकल्प मौजूद हैं या तो वह राज्य पाकिस्तान के इस्लामी गणराज्य का भाग बन जाये या वह एक स्वतन्त्र इस्लामी गणराज्य के रूप में भारत से टूट कर कायम रहे।

महात्मा गांधी जैसे अहिंसावादी ने यह स्वीकार किया था कि "साम्प्रदायिक दंगो और अहिंसा को रोकने के लिए राज्य को शक्ति का पूरा उपयोग करना चाहिए।" 'इसके लिए माल उपदेश कर देना पर्याप्त नहीं है कि हिन्दू–मुस्लिम–ईशाई आदि के परस्पर प्रेम से रहना चाहिए। इस समय एक ऐसे उदार सांस्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता है जो हमारे दूषित मन को विशुद्ध करे और युग के अनुकूल हममे नये संस्कार सम्पन्न कर हमको उदार बुद्धि प्रदान करे।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

इस प्रकार हम धीरे–धीरे आचार की समानता और एकरूपता ला सकेंगे और आचार की विविधता को बहुत कुछ घटा सकेगें। और भी अनेक उपाय है जिन पर विचार किया जा सकता है किन्तु सबका आधार यहीं हो सकता है कि सबको ऐसी शिक्षा–दीक्षा होनी चाहिए जिससे आचार की एकरूपता सिद्ध हो और सब राष्ट्रीयता और जनतन्त्र के महत्व को समझे और उनके अनुकूल आचरण को बनायें तभी राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा को मजबूत आधार दे सकते है। धर्म एक व्यक्तिगत वस्तु है उसे राष्ट्र कार्य में बाधक नहीं बनना चाहिए। राज्य को किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु ऐसे उपाय अवश्य करने चाहिए जो इस साम्प्रदायिक विचारधारा को विनष्ट करने में समर्थ हों।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दूमां, लुईस ''नेशनलिज्म एण्ड कम्प्यूनलिज्म' इन 'केन्ट्रीब्यूशन टू इण्डिया सोशिओलोजी', 1974, पृ0 30.
2. चन्द्र, विपिन, ''कम्यूनलिज्म इन माडर्न इण्डिया'' 1984, बानी एजूकेशनल बुक्स, न्यू देलही।
3. विपिन चन्द्र, वही पृ0 6.
4. हबीब, इरफान, रवीन्द्र भारतीय विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय आन्दोलन पर आयोजित वर्कशाप में भाषण (हिन्दुस्तान टाइम्स, 01 दिसम्बर 1988) पृ0 सं0–7.
5. हसन, नृरूल, दिल्ली वि0वि0 में जवाहर लाल सेन्टेनरी लैक्चर सीरीज का उद्घाटन भाषण (हिन्दुस्तान टाइम्स, 03 दिसम्बर 1988) पृ0 सं0 5.
6. गांधी, महात्मा हरिजन, 30 जनवरी 1937.

*****